# यथार्थ बोध

ओम तत्सदात्मने नमः

यह स्थूल शरीर का तरीका तो जानते ही हो, पाँच तत्व से बना है। ये पाँचों तत्व हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनकी उतपत्ति का क्रम ऐसे है कि प्रथम ओम रूप चैतन्य से शब्द, से आकाश, आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, वायु से रूप, रूप से तेज या अग्नि, तेज से रस, रस से जल, जल से गन्ध, और गन्ध से पृथ्वी। ये पाँच तत्व अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं, इनको पंचीकृत पंचमहाभूत बनाना है। हम वह शैली बताते हैं– इसे वेदान्त शैली कहते हैं। अब जैसे पृथ्वी है। इसमें ये जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्व भी मिले हैं। पृथ्वी में आवाज भी आती है। कभी–कभी हरकत भी करती है, वायु की तरह। आग भी निकलती है। पृथ्वी में तरलता भी होती है। और पृथ्वी ठोस भी होती है। तो पाँचों तत्व हो गये पृथ्वी में। इसी प्रकार जल में भी पाँचो तत्व हैं। और वायु में भी अग्नि में भी हैं। और आकाश में भी पाँचों तत्व हैं। इस प्रकार इन पाँचों तत्वों में, पाँचों तत्वों के अंश मिलने से हर एक के पाँच पाँच रूप बनते हैं। ऐसे पंचीकृत होकर ये पाँच तत्व 5 5 = 25 प्रकृतियां बन जाते हैं। वेदांत में इसे पंचीकरण कहा जाता है। यह तो हो गये तुम्हारे अपंचीकृत पंचमहाभूत और पंचीकृत पंचमहाभूत। ये स्थूल जगत के हो गये। वाक्यांश, घ्राणांश, रसांश आदि ये जो पांच तंमात्राएं हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन्हें सूक्ष्मभूत कहते हैं। इनके अंश हैं, ये अपंचीकृत पंच महाभूत। अब सूक्ष्म को देखो, जिनसे यह क्रिया करता है, वह हैं इसमें। तो ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां– कान, नेत्र, वाक् त्वचा, नाक। तथा पांच कर्मेन्द्रिया हैं– हाथ, पैर, गुदा, लिंग और रसना। ये दस इन्द्रियां हो गयीं, और पाँच कोस अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय। कोई–कोई पँचकोषों के बजाय पांच प्राण लेते हैं। और मन, बुद्धि तथा अहंकार को ले लो तो अठारह हो गये। अगर केवल मन और बुद्धि को लिया जाय,तो 17 तत्वों का यह सूक्ष्म शरीर होता है। इनसे क्रियाएं होती हैं। यह शरीर मकान हो गया, और इसके अंदर ये काम करने वाले कर्मचारी हो गए। और ये सब, काम करने की ताकत जहां से पाते हैं, वह कारण शरीर है। और ये दोनों–स्थूल और सूक्ष्म–ये कार्य हो गए। तो कारण, कार्य में अनुगत होता है। और कार्य कारण में अनुगत नहीं होता। कार्य जो है दृश्य है, और कारण द्रष्टा है। द्रष्टा सत्य होता है। द्रष्टा, दृश्य में अनुगत होता है। और दृश्य, द्रष्टा में अनुगत नहीं होता। इसलिए दृश्य का ट्रांसफार्म होकर द्रष्टा बन जाता है। कार्य, कारण में बदल जाता है। जब हम

जान गए कि हिमालय की बर्फ पानी है, तो बर्फ, पानी बन जाती है। जब तक नहीं जानते, तो सफेदी या और कुछ कहते हैं। बर्फ कार्य है, पानी कारण है। दृश्य असत्य है, और उसका तीनों कालों में अभाव है। और द्रष्टा एक रस रहता है। देश–काल करके
बाधित नहीं है। इसलिए जब दृश्य बदलकर द्रष्टा बन जाता है। तो द्रष्टा ही द्रष्टा रह जाता है। तो तुम अपने आपको फील करो। काम हो गया। तो इस तरीके से कारण शरीर क्या है?– जो स्थूल, सूक्ष्म को ताकत देता है, उसको कारण कहते हैं। सबका मूल कारण है। सबसे बारीक है। और जो सबसेबारीक है, वही सबसे ज़्यादा ताकतवर होगा। आजकल जैसे विज्ञान वाले भी मानते हैं, कि परमाणु का विखंडन कर दिया जाय, तो बहुत बड़ी इनर्जी पैदा होती है। तो यह सिद्धान्त है, ईश्वर के सम्बंध में भी लागू होता है।

जो सबसे सूक्ष्म है, वह सबसे महान है। तो इस तरह से यह कारण बहुत महत्वपूर्ण है। कारण में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब विष्णु है। विष्णुका जो वर्णन मिलता है शास्त्रों में, वह ईश्वर के रूप में है। शंकर भी ईश्वर है, ब्रह्मा भी ईश्वर है। इन सभी के पास वीटो है। ये तीनों ईश्वर हैं। लेकिन जहां कोई समस्या आई, तो विष्णु के पास जाते हैं। इसलिए विष्णु सीनियर हैं। ये लोग जूनियर हैं – मोटे पदार्थ हैं, और वह मालीक्यूल है बारीक है। इस तरीके से इनकी पहुंच होती है। तो अब यह समझ में आ गया होगा, कि कारण शरीर का क्या मतलब है, सूक्ष्म शरीर क्या है?

हां वेदान्त की दृष्टि से कारण अज्ञान है। हां अज्ञान ही मूल कारण है संसार का। लेकिन जब सतोगुण रजोगुण तमोगुण का प्रंसग आएगा तो सतोगुण विष्णु है, रजोगुण ब्रह्मा है, तमोगुण शंकर है – ऐसा बताना पड़ेगा। जब अवस्था का प्रसंग आ गया तो जाग्रत का शंकर, स्वप्न का ब्रह्मा और सुषुप्ति का विष्णु को बताना पड़ेगा। और देवता का प्रसंग आ गया तो स्थूल के शंकर, सूक्ष्म के ब्रह्मा और कारण के विष्णु को बताना पड़ेगा। ये सब प्रसंगानुसार बताना पड़ता है। ये तीनों गुण हैं – इनके परे जाना है। त्रिगुणमयी माया है, और गुणातीत होना है। इन तीनों गुणों के–प्रकृति के सर्कुलेशन से बाहर होना है। इसका एक तरीका है। जैसे हम कभी–कभी कहा करते हैं कि – साधक जब साधना करता है तो अज्ञान पर विजय पा लिया। किसके द्वारा – ज्ञान के द्वारा। तो ज्ञान को पाकर, आनन्द लेने लगे। ऐसा नहीं होता कि हम ज्ञान का आनंद लेते रहें, भजन करते ही रह जायं। तो ऐसे नहीं चलता – ऐसे करोगे तो जो मरे थे रावण का परिवार (अज्ञान आदि) वे फिर से जिंदा

हो जायेंगे। यह आटोमैटिक सिस्टम है– यह नियम है। जैसे दुनिया में सब लोग सुख चाहते हैं, दुख कोई नहीं चाहता। तो मान लीजिए कि दुनिया से दुख विदा हो जाय। दुख रह न जाय। अब बचा सुख। तो बताओ, क्या दुख की गैर हाजिरी में, सुख का ज्ञान हो सकेगा? यह तो दुख की मेहरबानी है, कि सुख का ज्ञान करा देता है। यह तो रात की मेहरबानी है, जिससे दिन का ज्ञान होता है। और दिन की मेहरबानी से रात का ज्ञान होता है। इसलिए ईश्वर की जानकारी अगर लेनी है, तो ईश्वर की निन्दा भरपूर होनी चाहिए। और ये जितनी स्तुति या भक्ति ईश्वर की, ज़्यादा होती है, उतना ही उसका मिलना कठिन होता जाता है। ईश्वर का विरोध भरपूर होना चाहिए। जैसे रावण के समय या हिरण्य कशिपु के समय हो गया था। ईश्वर की भक्ति कोई न करे, तो तत्काल ईश्वर मिल जाय। ईश्वर का नाम न ले कोई, और सब माया ही माया हो जाये, तो तत्काल ईश्वर का प्रादुर्भाव हो जायेगा। इसका फारमूला हम बताएं, कि कैसे हो जायगा? तो इसका अनुपात होता है। अनुपात कैसे? अब जैसे ईश्वर की मान्यता समाज में 95 प्रतिशत तक बढ़ गई, और 5 प्रतिशत न मानने वाले रह गए। तो 95 प्रतिशत में एक प्रकार का ईगो आ जायगा, और उसका परिणाम क्या होगा, कि उसकी 95 प्रतिशत की जो क्षमता है, वह 5 प्रतिशत की ओर चली जायगी। धीरे–धीरे ईश्वर की मान्यता घटते–घटते 5 प्रतिशत रह जायेगी और अमान्यता 95 प्रतिशत पहुंच जायगी। तो अमान्यता–पक्ष का ईगो बढ़ेगा। कि हमीं हैं, और कोई नहीं है–ईश्वर ईश्वर। तब फिर वह उधर कीइनर्जी है जो, वह फिर आ जाएगी मान्यता–पक्ष में। ऐसे चलता रहता है। बस यह दुनिया की गति है। इसी तरह से व्यक्ति के अन्दर होता है। हर आदमी के अन्दर चलता है। तुम कुछ भी करके देख लो, यही नियम चलेगा। क्योंकि यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह कृत्रिम नहीं है। यह आटोमैटिक तरीका है। हम ईश्वर की जितनी ज़्यादा मान्यता करेंगे, उतना ही ईश्वर क्लिष्ट होता चला जायगा। देखते हो शास्त्रों में, ईश्वर के अवतार के पहले, ये रावण–कंस वगैरह के अत्याचार का वर्णन किया गया है। इसका यही मतलब है कि जब अधमायी बढ जाती है,तब धरती अकुला उठती है और भगवान के आने का उपाय बन जाता है।

जब प्रहलाद को उसके बाप हिरण्यकशिपु ने बहुत कष्ट दिया– पहाड़ से गिराया, आग में जलाया, अनेक तरीकों से, सताया उसे, तो नारद जी से नहीं देखा गया। भगवान विष्णु के पास गये और बोले–हे भगवान! अब देखा नहीं जाता। आपके भक्त प्रह्लाद को बहुत कष्ट दे रहा है, यह राक्षस हिरण्यकशिपु। आप कुछ करिये। विष्णु ने कहा नारद! तुम ऐसा कहते हो, तुम्हारी बुद्धि खराब हो गयी है क्या? अरे प्रह्लाद

को जो कष्ट दिये जा रहे हैं–वही कष्ट तो हिरण्यकशिपु को नष्ट करेंगे। प्रह्लाद को कोई कष्ट नहीं होता है। वह तो देखने वाले को ही, ऐसा लगता है। प्रह्लाद को तो प्रेम के आवेश में कुछ पता ही नहीं चलता। तो इस प्रकार जिस साधक के हृदय में प्रेम रूपी प्रह्लाद पैदा हो जाता है, वह काल को भी छका डालता है, और उसका कुछ नहीं बिगड़ता। जब ऐसा प्रेम आ जाता है, तो उसे पा लिया जाता है।

जो प्रकृति की साम्य अवस्था है–इसमें चेतन का प्रतिबिम्ब कारण है। यह प्रकृति की साम्य अवस्था, तीनों गुणों से निकल जाने पर आती है। प्रकृति से ऊपर उठ जाय; कोई इच्छा न रह जाय–तीनों देहों की, और जो कुछ दिखाई–सुनाई पड़ता है, उससे हम मुक्त हो जायं। इसीलिए ध्यान और नाम बताया जाता है, कि बारीक बनो, बारीक बनो।

तो रामायण साधक के अन्तःकरण की लीला है। महाभारत, साधक के अन्तःकरण की लीला है। ये दो तरह के साधकों के अन्तःकरण की बातें है। दोनों साधकों की साधना का शुरू और एण्ड एक जैसा है। अब उसमें गतिविधियाँ अलग–अलग हैं। इसने कितनी कैसी साधना की, उसने कैसी साधना की? इससे दोनों की क्रियाओं में अन्तर आ सकता है, लेकिन मूलतः बहुत ज़्यादा अंतर नहीं है। दोनों की गतिविधि करीब–करीब एक जैसी है। जैसे इन दोनों के शीर्षक को लें–एक का नाम है, महाभारत और एक का नाम राम चरित मानस। महाभारत का अर्थ है–महा डिग्री है, महान। भा का मतलब है ज्ञान और रत, लगा हुआ। महाभारत। जो महान ज्ञान में रत है। जो साधना में रत है। जो ईश्वर की खोज में लगा है। जो अपने स्वरूप को जानना चाहता है। जो आद्योपान्त सिद्धान्त है। तो जो थीसिस है–इसका नाम है–महाभारत। उसमें वह लगा हुआ है। इसी प्रकार एक दूसरा जो साधक है, रामायण के अनुसार लगा हुआ है। तुलसीदास ने रामायण नाम न देकर, नाम दे दिया 'रामचरित मानस'। इसका अर्थ है कि राम जो एक रस सर्वत्र रम रहा है, उस राम के चरित्र मन से। वही तो है। जब दुर्योधन का अंत हो गया और पांडव जीत गए। राज्य हो गया उनका, तो क्या राज्य किया उन्होंने? वे उदासीन होकर निकल गये। विजातीय पार्टी का अन्त हो गया, तो साधक ने अपने हृदय से सजातीय पार्टी को भी निकालदिया। पांडव हिमालय में जाकर गल गए। ऐसे ही रामायण में भी है। विजातीय पार्टी का लीडर रावण होता है, और सजातीय पार्टी का राम होता है। और दोनों में संघर्ष होता है। संघर्ष होते–होते जब राम की विजय हो जाती है, रावण मार दिया जाता है। तो विभीषण को राज्य देकर, काम खतम हो गया। राजा का मतलब

है–ईश्वर की प्राप्ति हो गई–ईश्वर से भी बड़ा कोई राज्य है क्या? बस फिर राजगद्दी हो गई। फिर विभीषण, सुग्रीव, अंगद सबका त्याग कर दिया।

तो इस तरह से इन दोनों ग्रन्थों का प्रारम्भ और अंत एक सा है। अब उनके योद्धाओं की क्रिया क्या है? वह भी करीब–करीब कई तरीके से मिल जाती है। इनके जो विशेषज्ञ हैं, डाक्टर हैं, जो थीसिस बनाने वाले हैं, करीब–करीब एक जैसा देते हैं। उधर धृतराष्ट्र एक तरफ अंधा अज्ञान है–एक तरफ पुण्य रूपी पाण्डु है। इधर भी एक तरफ मोह रूपी रावण है–दूसरी तरफ ज्ञान रूपी राम है। दोनों का तालमेल बैठ जाता है। दोनों का भाव एक जैसा आता है। संख्या की गणना भी एक जैसी है। पदुम अठारह यूथप बंदर। तो उधर भी 18 अक्षोहिणी सेना बताया है। अब इनके योद्धाओं के विषय में भी एक ही जैसे वर्णन मिल जाते हैं। विजातीय पार्टी में पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, दुशासन आदि रथी, महारथी, अतिरथी बड़े–बड़े अनगिनती योद्धा थे। और इधर भी पांचों पांडव थे। बाकी सहायक थे। सात अक्षोहिणी सेना इधर थी–ग्यारह अक्षोहिणी उधर थी। लेकिन इधर मुख्य पांच पांडव थे–इनमें एक धर्मराज युधिष्ठिर थे। उनके ये चार भाई भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन। तो ये दो पार्टियां हैं, यह संरचना है, साधक के अन्तःकरण की। साधकों की अपनी–अपनी रुचियां हैं। साधना हम भी करते हैं, तुम भी करते हो, लेकिन रुचियां भिन्न–भिन्न होती हैं। हमको नमकीन अच्छा लगता है। तुमको मीठा अच्छा लगता है। तुम्हारे स्प्रिट (आत्मा) और हमारे स्प्रिट में कोई जातभेद का अन्तर नहीं है। तुम्हारे शरीर और हमारे शरीर में कोई अन्तर नहीं है। यह तो रुचि है – जिसमें अन्तर होता है। वो जो महाभारतीय ढंग का साधक है, उसने सीनियरटी को थोड़ा कम लिया है। उधर जो रामचरित मानस में वर्णन है, उसमें राक्षसों को भी बहुत बलवान बताया गया है। मोह रावण महा बलवान था ही, काम मेघनाद भी बहुत बली था, कुंभकर्ण, नारांतक, अहिरावण आदि आदि। और इधर राम की तरफ भी एक से एक बलवान योद्धा थे। सुग्रीव महाबली था। वैराग्य रूपी हनुमान बहुत बलवान, अनुराग रूपी अंगद आदि सभी बड़े–बड़े बलवान थे। जामवन्त–जानकारी। सब महान बलवान हैं। तो

**कलप भेद हरि चरित सुहाए।**
**भांति अनेक मुनीसन्ह गाए।।**

यह कलप भेद करके लीला है। काया ही कल्प है। यह हमारे काया में जब कल्याण हुआ, तब ऐसा चरित हुआ। तुम्हारे काया का जब कल्याण होगा, तो तुम्हारे अंदर कैसा चरित्र होगा। कैसे उसके पायक लोग हैं। क्या मनुष्य और बंदर मिलकर

लड़े राक्षसों से, या मनुष्य ही मनुष्य लड़े। जैसे महाभारत में मनुष्य मनुष्य लड़े। और रामायण में मनुष्य और बंदर मिलकर लड़े–राक्षसों से। तो ये प्रकृति–भिन्नता हो जाती है। लेकिन उसके चार्ट में अन्तर नहीं है। इधर लक्ष्मण बड़े भारी वीर, राम के भाई धनुर्धर थे। उधर अर्जुन को धनुर्धर माना गया। उधर दुर्योधन को भी गदा युद्ध में भारी बलवान माना गया। तो साधकों को बहुत छोटी–छोटी इन बातों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये। मूल बातों को पकड़ना चाहिए। उन्हींदिया। पांडव हिमालय में जाकर गल गए। ऐसे ही रामायण में भी है। विजातीय पार्टी का लीडर रावण होता है, और सजातीय पार्टी का राम होता है। और दोनों में संघर्ष होता है। संघर्ष होते–होते जब राम की विजय हो जाती है, रावण मार दिया जाता है। तो विभीषण को राज्य देकर, काम खतम हो गया। राजा का मतलब है–ईश्वर की प्राप्ति हो गई–ईश्वर से भी बड़ा कोई राज्य है क्या? बस फिर राजगद्दी हो गई। फिर विभीषण, सुग्रीव, अंगद सबका त्याग कर दिया।

तो इस तरह से इन दोनों ग्रन्थों का प्रारम्भ और अंत एक सा है। अब उनके योद्धाओं की क्रिया क्या है? वह भी करीब–करीब कई तरीके से मिल जाती है। इनके जो विशेषज्ञ हैं, डाक्टर हैं, जो थीसिस बनाने वाले हैं, करीब–करीब एक जैसा देते हैं। उधर धृतराष्ट्र एक तरफ अंधा अज्ञान है–एक तरफ पुण्य रूपी पाण्डु है। इधर भी एक तरफ मोह रूपी रावण है–दूसरी तरफ ज्ञान रूपी राम है। दोनों का तालमेल बैठ जाता है। दोनों का भाव एक जैसा आता है। संख्या की गणना भी एक जैसी है। पदुम अठारह यूथप बंदर। तो उधर भी 18 अक्षोहिणी सेना बताया है। अब इनके योद्धाओं के विषय में भी एक ही जैसे वर्णन मिल जाते हैं। विजातीय पार्टी में पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, दुशासन आदि रथी, महारथी, अतिरथी बड़े–बड़े अनगिनती योद्धा थे। और इधर भी पांचों पांडव थे। बाकी सहायक थे। सात अक्षोहिणी सेना इधर थी–ग्यारह अक्षोहिणी उधर थी। लेकिन इधर मुख्य पांच पांडव थे–इनमें एक धर्मराज युधिष्ठिर थे। उनके ये चार भाई भीम, नकुल, सहदेव, अर्जुन। तो ये दो पार्टियां हैं, यह संरचना है, साधक के अन्तःकरण की। साधकों की अपनी–अपनी रुचियां हैं। साधना हम भी करते हैं, तुम भी करते हो, लेकिन रुचियां भिन्न–भिन्न होती हैं। हमको नमकीन अच्छा लगता है। तुमको मीठा अच्छा लगता है। तुम्हारे स्प्रिट (आत्मा) और हमारे स्प्रिट में कोई जातभेद का अन्तर नहीं है। तुम्हारे शरीर और हमारे शरीर में कोई अन्तर नहीं है। यह तो रुचि है – जिसमें अन्तर होता है। वो जो महाभारतीय ढंग का साधक है, उसने सीनियरटी को थोड़ा कम लिया है। उधर जो रामचरित मानस में वर्णन है, उसमें राक्षसों को भी बहुत बलवान बताया गया है।

मोह रावण महा बलवान था ही, काम मेघनाद भी बहुत बली था, कुंभकर्ण, नारांतक, अहिरावण आदि आदि। और इधर राम की तरफ भी एक से एक बलवान योद्धा थे। सुग्रीव महाबली था। वैराग्य रूपी हनुमान बहुत बलवान, अनुराग रूपी अंगद आदि सभी बड़े-बड़े बलवान थे। जामवन्त-जानकारी। सब महान बलवान हैं। तो

**कलप भेद हरि चरित सुहाए।**
**भांति अनेक मुनीसन्ह गाए।।**

यह कलप भेद करके लीला है। काया ही कल्प है। यह हमारे काया में जब कल्याण हुआ, तब ऐसा चरित हुआ। तुम्हारे काया का जब कल्याण होगा, तो तुम्हारे अंदर कैसा चरित्र होगा। कैसे उसके पायक लोग हैं। क्या मनुष्य और बंदर मिलकर लड़े राक्षसों से, या मनुष्य ही मनुष्य लड़े। जैसे महाभारत में मनुष्य मनुष्य लड़े। और रामायण में मनुष्य और बंदर मिलकर लड़े-राक्षसों से। तो ये प्रकृति-भिन्नता हो जाती है। लेकिन उसके चार्ट में अन्तर नहीं है। इधर लक्ष्मण बड़े भारी वीर, राम के भाई धनुर्धर थे। उधर अर्जुन को धनुर्धर माना गया। उधर दुर्योधन को भी गदा युद्ध में भारी बलवान माना गया। तो साधकों को बहुत छोटी-छोटी इन बातों के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये। मूल बातों को पकड़ना चाहिए। उन्हींस्मृति के आधार पर शिष्य को सुनाया, शिष्य को स्मरण करा दिया। सुना और स्मरण किया। श्रुति और स्मृति। इस तरह से यह परम्परा से चलते रहे। श्रुति-स्मृति, श्रुति और स्मृति। इसके अलावा और तो कुछ मिलता नहीं।

समाज में परिवर्तन होता रहता है-एक चीन का यात्री यहाँ आया था इंडिया में-इतिहास में आता है-उसने लिखा है, कि यहाँ रात में घरों के किवाड़ खुले रहते थे, कोई ताला नहीं बंद करता था-कोई चोर था ही नहीं। तो जब समाज में समत्व, सद्भावना, अच्छाई, आ जाती है, तो समाज में सतयुग आ जाता है। जब बुराई का त्याग और अच्छाई को ग्रहण करने वाला समाज होता है, तो त्रेता युग होता है। जब समाज में दोनों को लेने की या द्विविधा की स्थिति रहती है, कि माया भी मिल जाय भगवान भी मिल जाय, तो द्वापर युग होता है। और जब समाज में चारों ओर कपट ही कपट का बोलबाला हो जाता है, तो कलियुग होता है। ऐसा नहीं कि पहले सतयुग इतने से इतने तक रहा, फिर त्रेता इतने दिन रहा, फिर द्वापर। ये सब ना समझी की बातें हैं। यह काल करके बाधित नहीं होती संसार की गतिविधि। यह आटोमैटिक प्रक्रिया है। यह ऐक्शन-रियेक्शन है। इसको जो मान लेते हैं, वो बरबाद हो जाते हैं। इसे अलौकिक मानकर चलें। यह है नहीं, फिर भी है। इसे आश्चर्यवत्

क्यों नहीं देखते है? यह जैसा तुम देखते हो वैसा है नहीं। यह मेरा घर है, यह मेरा कम्बल है, यह मेरी वस्तु है, यह मैं हूँ फलां का, मेरा कोट है–यह ऐसा है नहीं। यह जैसा रूपों में आता है, वैसा नहीं है। यह दूसरे ढंग का है। समझ काल में पाया हुआ संसार का दृश्य झूठ है, और अनुभव काल में पाया गया संसार का दृश्य सही है। इसलिए अनुभव को पाने का प्रयास करना चाहिए। क्या संसार की कोई चीज़ सही है? किसी को कभी मिली? जो कहता है मेरी चीज़ है,क्या उसको कभी मिली? जो कहने वाला है, वही गायब हो जायगा, तो चीज़ कहां से मिलेगी?

**'मात कुंवारी, बहू लरकौरी, ननंद दरेरा खाय।**
**देखन हारी के बेटवा होइगा लिये परोसिन जाय।।'**

यह जो माया है, कुंवारी है। इसको कोई पुरुष, पत्नी नहीं बना पाया। शादी नहीं कर सका, इससे। यह अलौकिक है। यह उसी से शादी करती है, उसी के पैर दबाती है, जो पुरुष अलौकिक बन जाता है। जो सर्वत्र हो जाता है। जो देश–काल अबाधित सार्वभौम महात्मा, ऐसे पद को प्राप्त कर लेता है। जो इससे हमेशा–हमेशा के लिए अलग हो जाता है। जो इसके गुणधर्मों में कभी भी प्रकट नहीं होता है। ऐसे महापुरुष के यह पैर दबाती है।

माया, ईश्वर और सद्गुरु ये तीनों अलौकिक हैं। इसलिये इस संसार को आश्चर्यवत् देखना चाहिए। जो संसार में देखते हैं, कि यह मेरा है– उनकी दृष्टि अच्छी नहीं, उनकी दृष्टि का ट्रान्सफार्म होना चाहिए। रूपान्तरण होना चाहिए। अभी साधना नहीं करते। साधना से कुछ मतलब नहीं। इसलिए आश्चर्यजनक देखना चाहिए। चौंकना चाहिये हमेशा। हर चीज़ पाते हुए तुम्हें अलौकिक महसूस करना चाहिए। देखते हुए हर चीज़ को, अनदेखा बनाना चाहिए। ऐसा हम बता रहे हैं– समझ में नही आ रहा है? समझ से परे की बात है। आश्चर्यवत् देखना चाहिये, आश्चर्यवत् रहना चाहिए। आश्चर्यवत् वरतनाचाहिए। यह आलौकिक है। यह है नहीं, और फिर है। जैसे लाइट लगाओ कॉच पर तो रिफ्लेक्शन होता है। वह है नहीं, फिर भी बगैर हुए मान नहीं सकता। वही यह संसार है। ईश्वर रूपी जो भा है, ज्ञान है, प्रकाश है, उसका यह रिफ्लेक्शन है। वही, यह है नहीं तीनों कालों में, फिर भी हो रहा है। और इसका होनापन तुमने मान लिया, तो फिर इसके क्रिया–कलाप में तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। और जब तुम्हें जाना पड़ेगा, तो तुम बच नहीं सकते। इसलिए मूलतः कार्य में अपड़ के देख, कर्म को अकर के देख।

जो सत्य है वह निरवयव है। एकरस आकाशवत यह सब स्तम्भ खड़ा है। इसमें हरकत नहीं है। यह जो हरकत है– यह काला दिख रहा है, सफेद दिख रहा है भगवा दिख रहा है–यह स्थूल दृष्टि में है। जो हमारी ज्ञान दृष्टि है, उसमें हरकत नहीं है–वह स्तम्भ है। वह एक रस सर्वत्र भरा हुआ है। कोई जगह उससे खाली नहीं है– सर्वत्र परिपूर्ण और उसमें हरकत नहीं है, निस्पंद। अनंत आकाशवत्

**ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदम् , पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**

**पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।**

तुम्हारा स्वरूप यह है। इसको पाना है–इसमें रुकना है– इसमें डटना है। तो फिर डटते–डटते, डटते–डटते, झगड़ा करो, रोओ, गाओ। और ऐसे नहीं कि नियम अपना कर लिया और बैठ गए। ऐसे नहीं। जब डटेंगे, तब यह कथा, पोथी, भागवत और रामायण और महाभारत काम करेगी, ऐसे नहीं काम चलेगा। और इसमें बड़ी कलाबाजी है, कदम–कदम पर। ज्यों–ज्यों हम ऊपर चढ़ेंगे, त्यों–त्यों बदलता चला जायेगा। एक अवस्था में यह रूप रहा दूसरी में फिर बदल कर यह हो गया, तीसरे में फिर यह हो गया और इसकी अन्दर से एडजस्टिंग होना चाहिए। यह कला बुद्धि में समझने से नहीं होगी। बुद्धि में चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ना चाहिए। तब वह हमारे यहाँ काम करेगी। ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा–बुद्धि हमारी ऋत में भर गयी। **ऋत कहते हैं सत्य को।** जब उसमें चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ गया– गर्भाधान हो गया। वह काम करेगी और वह होना चाहिए। वही अलौकिकता है। वही नशा है, वही आवेश है। वह नशा हर समय चढ़ा रहना चाहिए। तो इस तरीके से आगे पीछे जो हम बताते हैं, समझकर चलना चाहिये और पिटी पिटाई बातों से कुछ होता जाता नहीं है। निम्न श्रेणी की बातें हैं। पहली भूमिका की बातें हैं–दूसरी भूमिका की बातें है। तीसरी भूमिका की बातें हैं। चौथी भूमिका में यह नहीं रह जायेगा। जाग्रत अवस्था, स्वप्न अवस्था में नहीं रह जायेगी। स्वप्न से जब सुषुप्ति में जायेंगे तो– स्वप्न नहीं रह जायेगी। तुर्या में जाने पर सुषुप्ति नहीं रहेगी। तुर्यातीत में जब पहुंच जायेंगे तो तुर्या नहीं रह जायेगी। इस प्रकार से इनको सबको रूपान्तर करते चलते हैं। और यह सब कला अपनी बुद्धि से नहीं आती। यह निरवयव होता है। कोई ताकत देता है। और चेतन का प्रतिबिम्ब जब बुद्धि में पड़ जाये। उसके हम पात्र बन जायं। ऐसी भूमिका बन जाय, तो फिर समझ काम कर जाती है। तो त्याग करना पड़ेगा।

जब हम अनसूया में थे तो एक बार ऐसा हुआ कि हमारी छड़ी गिर गयी और कमंडल बिगड़ गया। तो महाराज जी ने कहा, फ्यूचर में तुम गिर सकते हो– हमने

सोचा कि हम फेल हो गये। भारी दिक्कत आई थी। तो फिर हम दो एक रोज खाए पिये नहीं, बहुत खराब हालत में रहे। फिर पूछे, कि क्या कोई उपाय है, बचने का? कोई तरीका है क्या, कि छड़ी गिरे नहीं, ठीक हो जाये। और कर्तव्य रूपी कमंडलठीक हो जाय। तो कहा हाँ है-कपड़े फेंक दो, नंगे हो जाओ- और माघ का महीना था तो कहा - मौन हो जाओ और कोई इच्छा न करना, और घूमो। तपस्या करो, त्याग करो। त्याग से क्या नहीं हो सकता? अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मन तो वायु से भी वेगवान है। कैसे वश में होगा? तो कृष्ण ने कहा 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'। अभ्यास करो, अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? हंगर स्ट्राइक कर दो, कि हम मर जायेंगे, कट जायेंगे-तो फिर जल्दी से सप्लाई होगी। भगवान के यहाँ भी ऐसा चलता है। त्याग करो। हाँ तो किसी ने बताया था कि चित्रकूट की 84 कोश की परिक्रमा की जाती है। तो हमने सोचा यही ठीक रहेगा, ठंडी-ठंडी दो महीना घूमने में तबियत भी मस्त हो जायगी, और ठीक रहेगा। तो कपड़े फेंक दिये, और निकल पड़े। हम फिर गये चित्रकूट से सूरजकुंड, फिर नांदी, फिर राजापुर फिर मानिकपुर, फिर धारकुंडी, फिर सुतीक्षण आश्रम आ गए। दो महीने लगे। कोई ले जाय, धूनी लगा दे, तो रात में तापते, दिन में खा पीलें जो मिले, नहीं तो कोई न ले जाय, तो पेड़ के नीचे पड़े रहते। पुआल वगैरह में, पड़े रहते। ऐसे फिर आ गये, तो बताया कि सब ठीक हो गया मामला। तो क्या नहीं हो सकता करने से, और करेगा नहीं तो कुछ नहीं होगा।

तो जब काम हो जाय, तो उसका भी त्याग कर दे। लेकिन ऐसा नहीं, कि पहले से कर दे-बनावटी करने लगे। इसके लिए अंतर्जगत से हमें कम्यूनिकेशन होना चाहिए। हमको अनुभूतियाँ मिलनी चाहिए। हमको पता चले, कि अब हम इस लेविल पर आ गये, अब यह करो। वह जो कुदरत है, उसमें क्षमता है-वह हमें बताए। तब साधक को बोध होना चाहिए। जो इस तरीके से बोध करेगा, वह सही बोध माना जायेगा। सही तरीका माना जायेगा। और ऐसे नहीं कि, दस बीमार आदमी आए, और बिना दवा कराए पांच ठीक हो गए। तो यह कोई आशीर्वाद नहीं है-अरे,दस में से सब तो मर नहीं जायेंगे। आधे तो ठीक होंगे ही। यह सब गलत तरीका है-ईश्वर में आस्था कम करने के लिए है। मेरे विचार से तो सीधा तरीका है, कि हमारे पास अन्तःकरण है और इन्द्रियाँ हैं। अन्तःकरण यह मन बुद्धि चित्त अहंकार है, और इनके पीछे कोई ऐसी अदृश्य सत्ता है- जिसे हम सब लोग आत्मा कहते हैं। और वह आत्मा, परमात्मा का ही अंश है। और वह आत्मा, परमात्मा से विछोह प्राप्त होने के कारण, उससे भिन्न प्रतीत होता है। लेकिन निरंतर उसकी गति परमात्मा की ओर

बनी रहती है। जैसे वायु समुद्र से पानी शोषित करके बादल बना देती है, और फिर बादल हिमालय जैसे पहाड़ों की चोटियों पर वर्षा करते हैं। एक बूंद गिरी, दस बूंद गिरी, हजार बूंद गिरी और बहुत सी बूंदें गिरीं, तो पानी एक नाली का रूप लेकर चल पड़ता है। जिधर वह चलना जानता है, जिधर ढलान है। फिर कई नालियाँ मिलकर नाले का रूप ले लेगा, चलता रहता है। फिर नदी बना लेते हैं, फिर चलता रहता है, और चलते-चलते वहीं पहुंच जाता है- समुद्र में, जहां से चला था। मेरे विचार से परमात्मा समुद्र के समान है, और हम सब लोग बूंद के जैसे हैं। किन्हीं अदृश्य कारणों से, हम उससे भिन्न हो गए हैं। और जहाँ-तहाँ गिर गये हैं। और हम सभी अंश अपने अंशी परमात्मा के पास पहुँचना चाहते हैं।

कौन ऐसा है। जो नहीं चाहता परमात्मा को। कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो कहते हैं हमें नहीं ज़रूरत है परमात्मा की, तो उस बुद्धि में लगी है आग माया की। वह विषय में फंस गया है-उसी में आनंद मानने लगा है। कोई काम में फंस गया है। कोई पैसे में फंस गया है। कोई और चीज़ में फंस गया है-फंसापड़ा है, लेकिन जब छूटेगा तो उधर ही जायेगा। इस तरीके से, हर आदमी का यह कर्तव्य है, कि हम अपने अन्तःकरण को शुद्ध करें। और अन्तःकरण की शुद्धि, बगैर निर्मल हुए, नहीं हो सकती-पवित्र हुए बगैर नहीं हो सकती। और पवित्र तभी होंगे जब हम आकाशवत् हो जायें। दूसरा कोई तरीका तो है नहीं। चाहे ध्यान से आकाशवत हो जायं। सबसे मन हमारा हट जाय। न खाने में रह जाय, न पीने में रह जाय, न सोने में रह जाय, कहीं न रह जाय, बस स्तम्भवत हो जायं। चाहे किसी तरीके से हो जायं। चाहे नाम से हो जायं चाहे ध्यान से हो जायं। तो उसी स्वरूप को प्राप्त करने के लिये, प्रयासरत रहना चाहिये। फिर ये इद्रियां, अगर हम ईश्वर की ओर जायेंगे, तो ये दूसरा रूप धारण कर लेंगी। और अगर नहीं जायेंगे, तो फिर दूसरा रूप धारण कर लेंगी। यह मोटी सी बात है। सबकी समझ में क्यों नहीं आती?

हमारा धर्म यह है, कि हम यह प्रयत्न करें कि हम अपने मन को खड़ा कर सकें। इसमें एक ही तरीका है। बहुत से साधकों को यह भ्रम हो जाता है, कि मन को जब हम चौबीस घंटा नाम में खड़ा रखेंगे, तब जाकर यह मन ठीक होगा। ऐसा नियम नहीं है-ऐसा तरीका नहीं है। तरीका यह है, कि हम अपनी स्पीड बढ़ाएं। वेग बढ़ाएं। तीव्र गति दें। और कुछ टाइम नियत करें- दो महीना-चार महीना, साल-दो साल। और इतने समय में, मन को कंट्रोल करें। और अन्दर से इसकी तस्दीक हो जाय, तो फिर समझो काम हो गया। अगर तस्दीक नहीं होता, तो फिर हमें बोध नहीं होगा। और अगर परमात्मा की स्वीकृति हो जाय, कि हाँ, तुम्हारा यह काम हो

गया तो फिर बोध हो जाता है। फिर यह सब दुनिया रहती है, और वह दुनिया से अलग हो जाता है। फिर वह जीवित रहता है, और जीवन-मुक्त रहता है। वह जीवन-मुक्त कहलाता है। तो इस तरीके से, उस स्थिति को पाना है। और मरने से मुक्त नहीं होता, मरने से तो पैदा होना पड़ेगा। इसी शरीर में रहते-रहते, इस लिमिट को पार करना है। इस नियमावली को पार करना है। इसलिए जब तक यह जीवन है, इसी में इसको पार करना है।

**'संतो जीवत की करो आशा।**

**मरे मुक्ति कहैं गुरु स्वार्थी, झूठ दें विश्वासा।।'**

और उसमें सहयोग परमात्मा का, मिलना चाहिए। वह खुद हमें राइज करे, उठाए। हमें बताए कि यह करो, यह ठीक है, यह ऐसा है। और यह सब, उधर से मिलता है। जहां साधक साधना करने लगता है, अंग फड़कन होने लगेगी। स्वप्न में संकेत आने लगते हैं। और भी तरीके हैं-आवाज मिलने लगेगी। लेकिन साधक की कमी है, कि पकड़ नहीं पाता। कैच नहीं करता। उसके लिए, उसमें स्पीड होनी चाहिए। तीव्र वेग होना चाहिए। त्याग का त्याग होना चाहिए। तब वह पकड़ लेगा। तो समझ में आ जाएगा। और अगर धीमी गतिवाला है, तो कम्यूनिकेशन कर नहीं पाता। इसलिए साधक अगर यह रूपान्तर कर ले, तो वह दिन दूर नहीं।

**रात भरे को जोर लगावे छोरि दिए भरि मासा।**

कबीर ने तो सब कुछ कह डाला है। कुछ बाकी नहीं छोड़ा है। लेकिन जब कोई करे तब तो। इस तरीके से, साधना करना बहुत ज़रूरी है, और स्पीड। और अगर इस तरह साधना बन जायगी, तो फिर भगवान भी हर अंग में चैतन्यता दे देंगे।

**"आगे आगे राह देत है, पीछे राखै नीत।**

**ना हां कहै, नहीं ना बोलै, है दोनों के बीच।।"**

न बोलता है, न हां कहता है और सब चीज़ समझा देता है। कैसे समझा देता है, यह उसका अपना तरीका है। यह हमारे समझने में क्यों रह जाता है-क्योंकि हमारी स्पीड कमजोर है। हम साधना करते हैं-लेकिन साधना में तीव्र बुद्धि नहीं है। तीव्र वैराग्य नहीं है। तीव्र लगन नहीं है। तो पहले दर्जे के नहीं हैं, तो हमें टाइटल कैसे मिल जायेगा? डिग्री कैसे मिलेगी? थर्ड क्लास को तो कोई अपनाता नहीं, फेलियर को तो कोई अपनाता नहीं। इसलिए दृढता आनी चाहिए कि यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है, प्रवृत्ति ही लंका है, मोह रावण है-राजा है, क्रोध कुंभकर्ण है, लोभ नारान्तक, अभिमान अहिरावण है, कपट कालनेमि है, विभीषण जीव है, जो सब

बताता है–लेकिन लात–घूंसा खाता रहता है। पराधीन है इसी में। दस सिर थे–रावण के। उसको दशरथ में रूपांतरित करना है। दसों दिशाओं में हम अर्थ में हो जायं। परमात्मा रूपी अर्थ में हो जायं, तो रावण खतम होने लगेगा–दशरथ बनने लगेगा। बस ऐसे शुरू हो जायेगा, तो खाका बन जायेगा। अब झगड़ा होगा, तो राम जो है, रावण को मारेगा। देखिये, जब रावण को बाण मारते हैं तो एक सिर काटते हैं तो कई सिर बन जाते हैं। एक भुजा काटते हैं तो कई भुजा बन जाती हैं। एक बूंद खून गिरता है, तो कई रावण पैदा हो जाते हैं। इसका मतलब कि अगर एक चिंतवन मन में हो जाय–काम का हो जाय, क्रोध का हो जाय, लोभ का हो जाय, तो हजारों संकल्प तैयार हो जाते हैं एक ही चीज़ के। एक स्त्री को याद कर ले कोई विषयी आदमी, तो वह रात भर उसे सोने नहीं देगी। संकल्पों–संकल्पों के ढेर लग जाएंगे। इतना ही तो लिखा है गोस्वामी जी ने, और लिखा क्या है? सत्य का निवास आकाश में है। और आकाश हमारी नाभि में है। ऐसे रावण नहीं मरेगा। जब हम आकाशवत हो जायं। ऐसे नहीं मरेगा। समुद्र के इसपार से जब हम लंका में प्रवेश कर जायं। तो यह कैसे हो? और वह भी जब हमें विभीषण बताए। वही सबका मूल कारण है–जीवात्मा। वही जानता है–उसके अलावा कोई जानता नहीं। वही बताएगा, कि इसका निवास यहाँ है। यहाँ से हटाओ इसे, तब मरेगा।

इस तरीके से जो विचार, जो सजातीय भावना–ध्यान में आई, और वही वाणी से निकल कर, आकाशवत हो कर, उसमें सिद्ध हो गई, तो रावण का हनन हुआ–रावण का नाभि से संबंध टूटा। तो अमृत, जो आत्मा है–नाभिकुण्ड में भरा हुआ है। और मोहरूप रावण जो असुर है,उसको उसमें होने का मतलब नहीं, इसलिए हनन हुआ। सत् का सत् रह गया। जैसे अमृत वर्षा तो हुई थी–दोनों के ऊपर। लेकिन भालू बंदर जी गए, राक्षस नहीं जिए। तो बन्दर सत् का रूप हैं–राक्षस असत् का रूप है। तो सत् सत् रहेगा। असत् असत् हो जाएगा–यही धर्म है अमृत का। इसलिए जो गुण है–अमृत का, वही किया। सत् की विजय होती है, असत् का नाश होता है। इस तरीके से अन्तःकरण अड्डा है– इस मोह का। जहाँ अन्तःकरण से हटा, तहाँ यह खतम हुआ। और जहाँ यह खतम हुआ, तहाँ एकदम रूपान्तर हो जाएगा। फिर विभीषण राजा बन जाएगा। पद दलित नहीं रह जायेगा। फिर जीव से ब्रह्म बन जाएगा। परमात्मा बन जायेगा। और जहाँ यह हुआ। तो बस जितने मिले थे सजातीय, उनका भी त्याग हो जाएगा। निशाचर पहले खतम हो जाएंगे। इस तरह से सजातीय–विजातीय दोनों का त्याग होजायेगा। दोनों से परे हो जायेगा। और अन्दर से

आवाज़ भी आनी चाहिए–अनुभूति आनी चाहिए। इस तरीके से अगर समझ कर किया जाय, तो ठीक रहेगा। बेटर (बेहतर) रहेगा।

हाँ तो, साधना की जगह है साधक का अपना शरीर। इस मानव देह को साधन धाम कहा गया है,

**साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।**

और इसके अन्दर क्रिया करने वाला है अन्तःकरण। क्रिया का जो परिणाम आता है, उसको अहंकार महसूस करता है, और यह मन। और इसी तरह यह दुनिया साधक के अंदर भी चलती रहती है। यह बाहर का संसार बहुत बड़ा है, और इसका छोटा रुप साधक के अंदर है–

**धड़ धरती का एकै लेखा।**

**जो बाहर सो भीतर देखा।**

आध्यात्मिक प्रक्रिया में लगा हुआ साधक, इस शरीर को ही हमेशा ब्रह्माण्ड मानता है। लिखा भी है,

**बपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंका।**

हमारा संसार इसी शरीर में है–बाहर की दुनिया तो बड़ी लम्बी चौड़ी है। यह है, और फिर भी नहीं है। यह अनिर्वचनीय है। यह न होना और होने के परे की चीज़ है– इसीलिए तो इसको अनिर्वचनीय कहा जाता है। और जो अन्दर का जगत है, यह छोटा रुप है– इसलिए इसको कंट्रोल करो, अपने मन को कंट्रोल करो। तो–

**पहले यह मन सर्प था, करता जीवन घात।**

**अब तो मन हंसा भया, मोती चुनचुन खात।।**

मन को बदलना साधक का काम है। साधन गुरु की कृपा से होता है। साधन, साधक को करना होता है। इसलिए मन को बदलना है। जब यह मन इंद्रियों के साथ विषयों में लगा रहता है, तो यह सर्प कहा जाता है, और जब इंद्रियों को विषयों से हटाकर ईश्वरोन्मुख हो जाता है, तब सर्प–भाव को त्याग देता है, और सर्प का जो दुश्मन है–वह गरुड़ बन जाता है। और जब गरुड़ बन जायगा, तो ईश्वर की शरण में आ जायगा। उसी को वहन करता है। और जब तक यह सर्प रहता है, तब तक माया की शरण में रहता है। बस दारोमदार इतने में है–साधना का। तो जब यह मन सर्पभाव छोड़कर गरुड़ बन जाता है–तो अब यह समझना चाहिए, कि गरुड़ का काम क्या है? विष्णु की सवारी है, गरुड़। विष्णु कहते हैं– जो सबसे बारीक है।

उसको कहते हैं–विष्णु। उसको वहन करता है यह। जब उस निरवयव को लिए रहेगा तब यह मन, इंद्रियों के साथ नहीं जायगा। विषयों की तरफ नहीं जायगा, ईश्वर के साथ रहेगा। तो फिर क्या होगा–

**मन जब उलटि लग्यो यहि ओर।**

**दस इन्द्रिन दस स्वाद छोड दियो खान पान रस भोर।**

मन जब माया क्षेत्र से उलटकर ईश्वर की ओर लग जाता है, और सब विषयों को छोड़ देता है, तब फिर दुनिया बदल जाती है। मन गरुड़ बन जायगा–इंद्रियाँ विषयों का त्याग करके, ऋद्धि–सिद्धि बन जायेंगी। इंन्द्रियाँ ऋद्धि बन जायेगी–अष्टधा मूल प्रकृति, अष्ट सिद्धियाँ बन जायेंगी। सबका ट्रांसफार्म हो जायगा। अविद्या क्षेत्र था जो पहले वाला, जिसमें यह मन सर्प था, इंद्रियाँ विषयणी थीं। अब विष्णु क्षेत्र में आकर, मन गरुड़ बन गया। विशुद्ध चेतन का प्रतिबिम्ब आ गया। इंद्रिया ऋद्धि–सिद्धि बन गईं। तो इस तरह जब बदल जाती है दुनिया, तो वह साधक की हायर लेबल की स्थिति बन जाती है। ईश्वर की इच्छा से मायिक इच्छाओं का दमन हो जाता है–ईश्वर की इच्छा का नाश कभी होता नहीं है– और मनुष्य की इच्छा, मायिक इच्छाओं का नाश हो जाता है। इसलिए मन का रूपान्तर होने से, ज्ञान आ जाता है। हमेशा के लिए वह ज्ञानी बन जाता है। भगवान की कृपा से साधक को पता चलने लगता है, कि कैसे क्या है? कैसे क्या होता है? यह जो थ्योरिटकल हम बताते जा रहे हैं, उसका वह प्रैक्टिकल करके देख लेता है। तो उसको सब चीज की अनुभूति आ जाती है, उसको समझ आ जाती है। कैसे करना चाहिए, कैसे चलना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए। उसकी गति ऐसी हो जाती है कि खाता है–खाने के संस्कार नहीं पड़ते। बोलता है, लेकिन बोलने के संस्कार नहीं पड़ते। वह सब कुछ करता है, लेकिन कुछ  नहीं करता। इस तरह से रूपान्तरण हो जाता है। सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि उसने मूल चीज़ को बदल लिया है। जो मन का सर्प रूप था उसे गरुड़ बना दिया है। यह सबसे बड़ी चीज़ है। मन से ट्रान्सफार्म हो गया। मन से बदल गया। यह बताने में तो सरल है, लेकिन करने में बहुत कठिन है। अगर साधक दृढ़ होकर करे। जो स्वभाव परिस्थिति है, उसके वशीभूत न होकर, सिद्धान्त में दृढ़ता पूर्वक जम जाय, तो–सब कुछ हो सकता है। ऐसे ही साधकों ने तो पहले भी किया होगा न? ऐसे ही शरीर वाले, ऐसी ही उंगलियों वाले, ऐसे ही पेट–पीठ, हाथ–पैर वालों ने ही तो किया है। और करके हम–तुम लोगों के लिए रास्ता दिखाया है। यह सोचकर, कि हमारे आगे आने वाले फालोवर (अनुयायी)

हमारी बातों को लेकर इसी तरह करेंगे–हमारा नाम रोशन करेंगे–हमारी परम्परा को चलाएंगे–ऐसे ही सोचा होगा न? तो आज तुम–हम सब लोग, सब कुछ कर सकते हैं। लेकिन उन नियमों को जानना बहुत ज़रूरी है– ऐसा नहीं कि उनका अपभ्रंश कर दिया जाय। सही का गलत, और गलत का सही कर दिया जाय।

हमें चाहिए कि बहुत बातों के चक्कर में न पड़ कर, सिद्धान्त में, ध्येय में दृढ़ हो कर, इच्छाओं को त्याग कर, भगवान में समर्पण करके करने में जुट जायं। मन और बुद्धि सबको लेकर समर्पण कर दें, और पहले थ्योरिटिकल अच्छी तरह समझ लिया जाय, कि काम क्या करना है? हमको – कैसे करना है, कैसे चलना है– यह सब समझा जाय और जब समझ में आ जाय फिर उसको किया जाय। ऐसा मेरा विचार है। अब जैसे मानिकपुर हमें जाना है–हम एक उदाहरण रख रहे हैं। मान लो मानिकपुर जाना है, और रास्ता हमें नहीं मालूम। तो जो मानिकपुर गया हुआ है– उससे हमें मिलना पड़ेगा। उससे मिलकर पूछेंगे–मानिकपुर कितनी दूर है? उसने बताया, 10 किमी.। फिर पूछा–किधर है–तो बताया कि उत्तर की तरफ। अच्छा तो फिर, कैसा क्या है वहाँ–बताया ऐसा–ऐसा है। और क्या है? तो कहा, वहाँ जंक्शन है, चाहे जिधर की रेल में बैठकर, कहीं भी जा सकते हो। चाहे इधर की रेल में बैठ जाओ, चाहे उधर की रेल में बैठ जाओ, चाहे मेल में, एक्सप्रेस में, पैसेन्जर में–सब तरह की गाड़ियाँ वहाँ से आती जाती हैं। वहां सब कुछ मिलेगा–वहां पहुंचना भर चाहिए। फिर पूछा कि जब आप गए मानिकपुर तो क्या दिक्कतेंआईं–क्या सुविधायें मिलीं? तो कहा कि 5 किमी. तो बहुत खतरनाक है, वहाँ तो जान बचाना मुश्किल है। और आगे फिर 5 किमी. काफी सुविधाएँ मिलीं। तब फिर मानिकपुर पहुंचे।

तो देखिये, यह तो एक उदाहरण है। अब इस दृष्टान्त को दार्ष्टान्त में जब घटाते हैं, तो मन को पूर्ण करना मानिकपुर है। मन सबका, यहाँ–वहाँ सेर, छटांकों में बंटा हुआ है। काम की तरफ, लोभ की तरफ, मोह की तरफ, ईर्ष्या की तरफ, द्वेष की तरफ चारों तरफ बंटा हुआ है। तो इसको सब तरफ से समेटना है। मन को पूर्ण करना है। अब कितना दूर है– 10 किमी.। तो दस इंद्रियाँ इनको वश में करना है। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–सबसे मुख्य हैं। शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गंध। यह 5 किमी. शुरू का मार्ग है। इन पांच को वश करना बहुत मुश्किल काम है। तो यह 5 किमी. कठिनाई वाला रास्ता है। जहाँ भालू, शेर, चीते मिलते हैं। चोर डाकू मिल जाते हैं। जो भी हमारे पास में हम लिए रहते हैं, सब छीन लेते हैं। तो ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यही चोर–डाकू हैं।

**काम क्रोध मत्सर बहुचोरा।**

जंगल के रास्ते में बाहर कोई जाता है, तो चोर डाकू मिलते हैं। और साधना के क्षेत्र में जब कोई साधक अंतःकरण में प्रवेश करता है, तो वहाँ काम क्रोध ये डाकू मिलते हैं। और बरबस ये इंद्रियाँ, मन को अपनी ओर खींच ले जाती हैं। आंख रूप की ओर खींच लेगी, घ्राण सुगन्ध की ओर खींच लेगी, कान शब्द की ओर खींच लेंगे, हाथ स्पर्श की ओर खींच लेंगे, जीभ रस की ओर खींच लेगी, और हमारा सर्वस लूट लेंगी। तो सबसे पहले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ये चोर तुम्हारा भजन-धर्म रूपी धन है, उसे चुरा लेंगे। और अगर इनसे किसी तरह से बचे, तो भ्रम रूपी भालू अटैक करता है। उधर चिंतवन रूपी चित्ते घेरे पड़े हैं। इनसे बचते हो, तो संसार का भय रूपी शेर खाए लेता है। उनसे बचे तो शंका रूपी सर्प लिपटे पड़े हैं। इस तरह यह भयानक अज्ञान रूपी जंगल का रास्ता पार करना है। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श के पांच किलोमीटर पार करना कठिन है। अगर तुम भाग्यशाली हुए और सही-गुरु का मार्गदर्शन, मिल गया और इसके द्वारा बताए अनुसार चलो, तो फिर कोई बात नहीं, फिर सत्य, शेखापुर मिल जायेगा। फिर हृदय-हेला गांव मिल जायेगा। और अगर हृदय में पहुँच गये, तो फिर मानिकपुर मिल जायेगा।

यह सरल है, यह समझ में आता है। इस तरह मन को पूरा कर लिया, तो फिर जो इच्छा रूपी ट्रेन खड़ी है। इड़ा-पिंगला पटरी हैं, रेल की। इच्छा रूपी ट्रेन है, जो आती-जाती है। इसमें संकल्प रूपी डिब्बे हैं। विकल्प और चिंतवन रूपी यात्री बैठे हैं, और हृदय रूपी प्लेटफार्म है। इसमें यात्री आते-जाते, उतरते-चढ़ते रहते हैं। तो इस तरह से कोई साधक, अगर अपने अन्तःकरण रूपी प्लेटफार्म को साफ रखे। इच्छा रूपी ट्रेने, आती-जाती रहें। यात्री भी आएंगे-जाएंगे, लेकिन उसका दुरुपयोग न होने पाए, गंदा न कर पावें, डेरा न जमाने पावें। किसी साधक के अन्तःकरण में शुद्ध तरीके से यह सध जाय, तो फिर वही ईश्वर का भगत, सद्गुरु का लाल, कहलाता है। और भगवान - सद्गुरु, उसके अन्तःकरण को अपना निवास बना लेते हैं। और ईश्वर जब चेतन का प्रतिबिम्ब डाल देता है, तो वह भाग्यशाली पुरुष - उसकी दुनिया बदल जाती है। उसके विचार बदल जाते हैं, तरीके बदल जाते हैं-उसके हृदय (घर) में, सब कुछ आ जाता है। उसकी कोई इच्छा नहीं रह जाती-ईश्वर की इच्छा से, उसके सब कामहोते हैं। सब कुछ करते हुए-कुछ नहीं करता। इसलिए यह समझ में आ जाना चाहिए हर साधक के, कि असंग कैसे साधक रहता है। और सब कुछ करते हुए कैसे निष्क्रिय रहता है।

अब सबसे बड़ी बात तो यह है, कि वह कसौटी हमें कहाँ मिले, कि हम में श्वांसा रूपी जो सोना है, उसको कसा जाय। सतगु रूपी कसौटी के बिना, अगर हर आदमी इसे तय करेगा, तो गलत हो जायेगा। यह हम अपने से नहीं कर सकते। इस विषय के विशेषज्ञ महापुरुष का मार्गदर्शन जरूरी है। जैसे दीपक किसी कमरे में जला दो, तो वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है, सबको प्रकाशित भी कर रहा है, लेकिन उसी दीपक के नीचे अंधेरा रहता है। इसलिए दूसरे दीपक की ज़रूरत होती है। तब उसका प्रकाश, उसके अंधकार को दूर करता है। इसलिए सबसे बड़ी ज़रूरत होती है–गु की। तो गुरू अगर जानकार मिल जाय तो सब ठीक हो सकता है। हाँ, गुरू तो एक अध्यापक को भी कहते हैं। शादी कराने वाले को भी गुरू कहते हैं। कोई भी मंत्र जो देता है, उसे गुरू कहते हैं– हाँ, कहाँ जा रहे हो गुरू? इस तरह बनारस में तो रंगबाज को भी गुरू कहते हैं। सब जगह कहते हैं। लेकिन ऐसा नहीं। गुरू उसको कहते हैं जो हमारे अंदर प्रवेश करे और मन बुद्धि की सारी गतिविधि को जान सके। जो पर काया प्रवेश की क्रिया जानता हो। जो हमारे अन्तःकरण का रूपान्तर कर सकता हो। ये सब कलाएं जिसके पास हों, उसको सद्गुरू कहते हैं। उनको हम मिलें, और उनके सामने अपने को समर्पण करें। जब हम उनको समर्पण कर देंगे, तब वह हमको देखेंगे, संभालेंगे।

**गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।।**
**आरत अधिकारी जहं पावहिं।**

गोस्वामी जी कहते हैं कि अगर आर्त अधिकारी मिल जाता है, तो महापुरूष उसके अन्तःकरण को समझते हैं, और उसके लिये जो उचित है, वैसा मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि अपने हृदय में भावना जो है वही भाव भरत है। ज्ञान का प्रतीक राम है, विवेक लक्ष्मण है और सत्संग का प्रतीक शत्रुघ्न है ये सब अवतरित हों। सत्संग सबसे महत्वपूर्ण होता है। शत्रुघ्न जो शत्रुओं का हनन करता है। सत्संग से शत्रुओं का हनन होता है। सत्संग कई तरह का होता है। एक तो यह भी सत्संग है जो हम बता रहे हैं, तुम लोग सुन रहे हो। यह मौखिक है, परोक्ष ज्ञान के लिए। एक वह सत्संग है कि तीनों कालों में जो अबाधित एकरस सद्वस्तु है आत्मा, उसका संग करें। यह क्रियात्मक है। अपरोक्ष या अनुभव ज्ञान के लिए। तो वह सत्संग सद्गुरू कराते हैं– सबसे वह सत्संग नहीं होता। किस तरह से हमारी प्रवृत्ति सत्संग में हो जाय, कैसे यह सत्संग हो जाय, इसके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। कहते हैं–

**सत संगति दुर्लभ संसारा।**

**निमिष दंड भरि एकउ बारा।।**

इस तरह से वह महान दुर्लभ वस्तु है, किसी किसी को बड़े भाग्य से मिलता है, सत्संग।

बड़े भाग पाइय सतसंगा।

हरिः ओम